INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 14 | ISSUE - 1 | FEBRUARY - 2024

'चन्द्रकान्ता' की भाषा-शैली

Dr. Kana Ram Meena
Associate Professor , Motilal Nehru college (e)

देवकीनन्दन खत्री ने हिन्दी गद्य साहित्य में उपन्यास विधा को समृद्ध बनाने में योगदान दिया है। 'चन्द्रकान्ता' व 'चन्द्रकान्ता सन्तति' से देवकीनन्दन खत्री को जितनी लोकप्रियता हासिल हुई उतनी हिन्दी के किसी भी उपन्यासकार को नहीं मिली। उन्होंने केवल तिलस्मी, ऐयारी व जासूसी प्रधान उपन्यास लिखे बल्कि रोमानी व ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे हैं। लेकिन सोचने की बात यह है कि 'चन्द्रकान्ता' जैसी लोकप्रिय कृति व खत्री के अन्य सृजनात्मक साहित्य के बारे में कुछ ग्रन्थों व शोधपरक पत्रिकाओं में टिप्पणियों व कुछ लेखों के अलावा कहीं भी विचार नहीं हुआ है। आलोचकों ने उनके उपन्यासों को तिलस्मी व ऐयारी प्रधान मनोरंजक उपन्यास कहकर साहित्य की श्रेणी से बाहर कर दिया है। राजेन्द्र यादव इस संबंध में लिखते हैं कि– "हिन्दी में इस आलोचकीय दायित्व के प्रति मुजरिमाना उदासीनता ने मुझे बार–बार उकसाया है कि एक बार इस चन्द्रकान्ता नामक तिलस्म को तोड़कर देखने की कोशिश ही क्यों न कर ली जाय। आखिर अपने पुरखों को जानने–समझने के लिए या अपनी जड़ों और संदर्भों को खोजने–समझने के लिए हर अगली पीढ़ी ने अतीत और परम्पराओं के खण्डहरों और जादुई कुओं के चक्कर लगाए ही हैं। अपने सफर का जायजा लेते हुए आगे बढ़ने की शक्ति और दिशा पाई ही है।"[1] इसलिए आज चन्द्रकान्ता जैसे उपन्यास की लोकप्रियता के समाजशास्त्रीय कारणों को खोजने की आवश्यकता है। राजेन्द्र यादव ने चन्द्रकान्ता की लोकप्रियता के सम्बन्ध में सही सवाल पूछा है– "चन्द्रकान्ता की इस अभूतपूर्व और भयानक लोकप्रियता के सामाजिक या मनौवैज्ञानिक कारण क्या रहे हैं? वह कौन–सी मानसिकता होती है जब समाज इस तरह के मनोरंजन, कौतुक या पलायन चाहने लगता है? अनयास या अनजाने ही लाखों पाठकों या दर्शकों को बांध लेने वाली किताब, फिल्म किसी गहरे अचेतन जरूरत को प्रकट और इंगित करती है या नहीं।"[2] इन सभी सवालों का हल खोजने के लिए चन्द्रकान्ता के समाजशास्त्रीय अध्ययन की आवश्यकता है।

यद्यपि देवकीनन्दन खत्री द्वारा रचित 'चन्द्रकान्ता' से पूर्व लाला श्रीनिवासदास, श्रद्धाराम फिल्लौरी व भारतेन्दु मण्डल के लेखक हिन्दी उपन्यासों की रचना कर रहे थे। लेकिन देवकीनन्दन खत्री ने तत्कालीन समय में लोगों की मानसिकता को पकड़ा और अपनी रचनाओं में पाठकों की मानसिकता की अभिव्यक्ति करते चले गए, जिससे हिन्दी उपन्यास के विकास का आधार तैयार हुआ।

'चन्द्रकान्ता' व देवकीनन्दन खत्री के अन्य उपन्यासों की भाषा की प्रशंसा सभी आलोचकों ने मुक्त कण्ठ से की है। भाषा के सम्बन्ध में स्वयं लेखक लिखता है कि– "किसी ग्रन्थ या पत्र की भाषा के लिये यदि किसी बड़े कोष को टटोलना पड़े तो कुछ परवाह नहीं, परन्तु साधारण विषय के लिए भी कोष को टटोलना पड़े तो निस्संदेह दोष की बात है। मेरी हिन्दी किस श्रेणी की हिन्दी है, इसका निर्धारण मैं नहीं करता, परन्तु मैं यह

जानता हूँ कि इसको पढ़ने के लिये कोष की तलाश नहीं करनी पड़ती।"[3] वास्तव में चन्द्रकान्ता की भाषा इसी प्रकार की थी जिसे पढ़ने के लिए पाठक को किसी शब्दकोश की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि जिस भाषा का प्रयोग देवकीनन्दन खत्री कर रहे थे वह सामान्य बोलचाल की भाषा थी। जिसे उस समय हिन्दुस्तानी कहा जाता था। भाषा की सरलता व सहजता के कारण हर वर्ग के लोग चन्द्रकान्ता के पाठक बने। सामान्य जन हो, चाहे जमींदार हो या बौद्धिक वर्ग हो हर किसी ने चन्द्रकान्ता को पढ़ा यहाँ तक जिसे हिन्दी नहीं आती थी उसने भी चन्द्रकान्ता के लिए हिन्दी सीखी और एक के बाद एक देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों को पढ़ते चले गये।

जिस दौर में देवकीनन्दन खत्री उपन्यासों की रचना कर रहे थे, उस समय भाषा को लेकर चारों ओर अराजकता विद्यमान थी। हिन्दी–उर्दू विवाद अपनी चरम सीमा पर था। लेखक व बौद्धिक वर्ग भाषा को लेकर दो खेमों में बंट गये थे। पहला वर्ग अरबी–फारसी से युक्त उर्दू का समर्थक था तो दूसरा वर्ग संस्कृतनिष्ट हिन्दी का समर्थक था। एक ओर राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द थे जो अरबी–फारसी से युक्त शब्दावली के पक्ष में थे तो दूसरी ओर ऐसे भी लेखक थे जो छाँट–छाँटकर उर्दू शब्दों का बहिष्कार करके संस्कृत शब्दों की भरमार से भाषा को मृत–प्राय और बोझिल बना रहे थे। इस तरह खत्री जी की भाषा के स्तर पर दोहरी लड़ाई थी। उन्होंने भाषिक कट्टरता और हठधर्मिता को छोड़कर भाषा के स्वस्थ और वैज्ञानिक विकास की पद्धति अपनायी। इस संबंध में मधुरेश ने लिखा है:– "भाषा के मोर्चे पर देवकीनन्दन खत्री की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि ऊपरी तौर पर दो परस्पर विरोधी दिखाई देने वाले रास्तों को उन्होंने अपने मानसिक आदर्श और व्यवहार के द्वारा एक कर दिया और इस तरह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समर्थक जो काम नहीं कर सके, वह अकेले उन्होंने करके दिखा दिया। उन्होंने हिन्दी को लगभग वहीं से उठाया जिसे लोग तिरस्कार भाव से 'राजा शिवप्रसादी हिन्दी' कहते थे। लेकिन उसके लिये निरन्तर संघर्षशील और सचेत रहकर उसे लगभग वहीं पर पहुँचा दिया जो स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समर्थकों का आदर्श था।"[4] कट्टरता व परस्पर विरोध के कारण हिन्दी भाषा के विकास में जो कठिनाइयाँ आ रही थी उन्हें देवकीनन्दन खत्री ने अपने ढंग से सरल व संभव बना दिया। इस सम्बन्ध में स्वंय खत्री जी लिखते हैं कि–

"यदि ईश्वरचन्द्र विद्यासागर सीधे–सादे शब्दों में बंगला में काम न लेते तो उत्तर काल के लेखकों को संस्कृत शब्द के बाहुल्य प्रचार का अवसर न मिलता और यदि 'राजा शिव प्रसादी हिन्दी' प्रकट न होती तो सरकारी पाठशालाओं में हिन्दी के चन्द्रमा की चांदनी मुश्किल से पहुँचती। मेरे बहुत से मित्र हिन्दुओं की अकृतज्ञता का यों वर्णन करते हैं कि उन्होंने हरिश्चन्द्र जैसे देशहितैषी पुरूष की उत्तम पुस्तकें नही खरीदीं, पर मैं कहता हूँ कि यदि बाबू हरिश्चन्द्र अपनी भाषा को थोड़ा सरल करते तो हमारे भाइयों को अपने समाज पर कलंक लगाने की आवश्यकता न पड़ती और स्वाभाविक शब्दों के मेल से हिन्दी की पैसिंजर भी मेल बन जाती।"[5]

देवकीनन्दन खत्री ने पाठक समुदाय को ध्यान में रखते हुए भाषा का चयन किया। उन्होंने सामान्य जन की मानसिकता को ध्यान में रखते हुए भाषा का प्रयोग किया है। 'चन्द्रकान्ता' की भाषा को समझने के लिए उर्दू जानने वालों के लिए केवल नागरी वर्णमाला सीख लेना ही पर्याप्त था, तो हिन्दी जानने वालों को भी शब्दकोश की आवश्यकता नहीं पड़ती। क्योंकि उपन्यास में सामान्य बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले उर्दू शब्दों का ही प्रयोग किया गया है। उन्होंने उपन्यास में संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग नहीं किया है तो अप्रचलित अरबी–फारसी शब्दों के प्रयोग से भी दूर रहे हैं। शब्द–चयन की दृष्टि से विचार किया जाए तो खत्री जी की भाषा में तद्भव और उर्दू–फारसी के बिल्कुल प्रचलित शब्दों का प्राचुर्य है, पर संस्कृत शब्दों का उन्होंने बिल्कुल प्रयोग न किया हो, ऐसा भी नहीं है। निम्न उद्धरण से इस कथन का स्पष्टीकरण होता है– "वीरेन्द्रसिंह का नाम सुनते ही यकायक चन्द्रकान्ता का अजब हाल हो गया। भूली हुई बात फिर याद आ गयी, कमल–मुख मुरझा गया, ऊँची–ऊँची साँसे लेने लगी, आँखों से आँसू टपकने लगे। धीरे–धीरे कहने लगी– "न मालूम विधाता ने मेरे भाग्य में क्या लिखा है। न मालूम मैंने उस जन्म में कौन से पाप किये हैं जिसके बदले यह दुःख भोगना पड़ा। देखो पिताजी को क्या धुन समाई है, कहते हैं चन्द्रकान्ता को कुँआरी ही रखूँगा। ...हाँ! वीरेन्द्र के पिता ने शादी करने के लिए कैसी–कैसी खुशामदे की मगर उस दुष्ट क्रूर के बाप कुपथ सिंह ने उनको ऐसा कुछ अपने वश में कर रखा है कि कोई काम नहीं होने देता और कम्बख़्त क्रूर मुझसे अपनी ही लस्सी लगाना चाहता है।"[6] उक्त

अवतरण में यद्यपि तद्भव और प्रचलित उर्दू शब्दों की बहुलता है, पर प्रचलित तत्सम शब्द भी जैसे कमल–मुख, विधाता, भाग्य, पाप, दुःख, दुष्ट आदि प्रयुक्त हुए हैं।

देवकीनन्दन खत्री ने भाषा के स्तर पर हिन्दू–मुस्लिम एकता को मजबूती देने का काम किया है। उपन्यास के अनेक हिन्दू पात्र अरबी–फारसी युक्त शब्दावली का प्रयोग करते दिखाई देते हैं, तो मुस्लिम पात्र भी तत्सम् व तद्भव शब्दों का प्रयोग करते दिखाई देते हैं। उदाहरण के रूप में भूतनाथ से बात करते हुए शेरअली खां को देख सकते हैं। जिस भाषा का इस्तेमाल शेर खां करता है वह इस प्रकार हैं– "ठीक है, बेशक ऐसा ही होगा, तो अब विलम्ब करना उचित नहीं है, चलिए और जल्दी चलिए।"[7]

देवकीनन्दन खत्री पहले मौलिक लेखक थे जो प्रयोग और व्यवहार के स्तर पर भाषा को लेकर सचेत दिखाई देते हैं। यही कारण है कि जिस भाषा का प्रयोग 'चन्द्रकान्ता' में है, 'चन्द्रकान्ता सन्तति' व भूतनाथ की भाषा वैसी नहीं है। जैसे–जैसे हिन्दी का पाठक वर्ग तैयार होता गया, उनकी भाषा में परिवर्तन होता गया। इस सम्बन्ध में देवकीनन्दन खत्री स्वयं कहते हैं कि– "'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता सन्तति' में यद्यपि इस बात का पता नहीं लगेगा कि कब और कहाँ भाषा का परितर्वन हो गया, परन्तु इसके आरंभ और अन्त में एकदम से शब्दों का प्रचार करते तो कभी संभव न था कि उतने संस्कृत शब्द हम उन कुपढ़ ग्रामीण लोगों को याद करा देते जिनके निकट काला अक्षर भैंस बराबर था। मेरे इस कर्तव्य का आश्चर्यमय फल देखकर वे लोग भी बोधगम्य उर्दू के शब्दों को अपनी विशुद्ध हिन्दी में लाने लगे हैं जो आरंभ में इसीलिये मुझ पर कटाक्षपात करते थे।"[8] वास्तव में देवकीनन्दन खत्री हिन्दी भाषा के विकास को लेकर हमेशा संवेदनशील थे। उन्होंने हिन्दी भाषा के विकास के लिए जिस उर्दू–फारसी मिश्रित हिन्दी शब्दावली का प्रयोग किया था, उसका तत्कालीन समय के लेखकों ने विरोध किया। उस समय संस्कृत निष्ठ हिन्दी के समर्थक भारतेन्दु मण्डल ने उनका सबसे ज्यादा विरोध किया। इस सम्बन्ध में पं. बालकृष्ण भट्ट ने खत्री जी की भाषा की आलोचना करते हुए जनवरी–मार्च 1897 ई. के 'हिन्दी–प्रदीप' में लिखा था– "उक्त बाबू साहब ने इसमें कूट–कूटकर संस्कृत शब्द नहीं भरे बल्कि क्लिष्ट संस्कृत शब्दों के बदले मुहावरे की सबके समझने लायक उर्दू को विशेष आदर दिया है। उचित था कि उर्दू के बदले सुललित ठेठ हिन्दी का प्रयोग करते पर क्रम कुछ ऐसा ही है कि लेखक पाठकों की रुचि के अनुसार लेख लिखता है जब रूपया पैदा करने के ख्याल से पुस्तक लिखी जाती है तब मातृभाषा की कोरी भक्ति अलग रख दी जाती हैं।"[9] तत्कालीन आभिजात्य साहित्यकारों ने देवकीनन्दन खत्री की भाषा शैली के बजारू बताते हुए आलोचना की है। लेकिन हमें इस तरह की आलोचना करते समय ध्यान रखना चाहिए कि भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने भी 'अन्धेर नगरी' में इसी प्रकार की आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। खत्री जी ने 'चन्द्रकान्ता सन्तति' में इस आरोप का उत्तर इस प्रकार दिया है– "भारत में 800 वर्षों तक विदेशी यवनों का राज्य रहा है। इसलिए अरबी–फारसी के शब्द हिन्दू समाज में 'न पढेत् यावनी भाषा' की दीवार लांघकर उसी प्रकार आ घुसे जिस प्रकार हिमालय के उन्नत मस्तक को लाँघकर वे स्वयं यहाँ आ गए थे। यहाँ तक कि महात्मा तुलसीदास जैसे भगवद्भक्तों को भी 'गरीब निवाज' आदि शब्दों का प्रयोग दिल खोलकर करना पड़ा।"[10] खत्री जी ने अपनी भाषा में उर्दू–फारसी शब्दावली के प्रयोग के लिए तत्कालीन मध्ययुगीन परिवेश को जिम्मेदार को माना हैं। उन्होंने भक्त कवि तुलसीदास के माध्यम से बताया है कि अपने परिवेश के प्रभाव से कोई नहीं बच सकता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में खत्री जी के इन आलोचकों से निवेदन करते हुए कहा है कि– "कुछ लोगों का यह समझना कि उन्होंने राजा शिवप्रसाद वाली उस पिछली 'आमफहम' भाषा का बिल्कुल अनुसरण किया जो एकदम उर्दू की ओर झुक गई थी, ठीक नहीं। कहना चाहे तो यों कह सकते हैं कि उन्होंने साहित्यिक हिन्दी न लिखकर 'हिन्दुस्तानी' लिखी जो केवल इसी प्रकार की हल्की रचनाओं में काम दे सकती हैं।"[11]

देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों में मुहावरों व लोकोक्तियों का काफी प्रयोग हुआ है। उन्होंने समाज में प्रचलित मुहावरों का अधिक प्रयोग किया है, यथा– "इश्क की आग में घी का काम करना[12], किस्मत का फेर[13], नाम पैदा करना[14], कच्चा चबाना[15], झक मारके करना[16] आदि प्रचलित मुहावरों का प्रयोग किया है। इसी तरह उन्होंने सामान्य जीवन में प्रचलित सूक्तियों या लोकोक्तियों का प्रयोग किया है जिनमें जीवन का सच्चा सार दिखाई देता है। यह लोकोक्तियाँ सामान्यजन में लोकप्रिय थी जिसके चलते उनकी भाषा अधिक शक्तिशाली व मज़ेदार बनती हैं, यथा– "दुश्मन को छोटा और कमजोर नहीं समझना चाहिए"[17] "नीम न मीठी होय सीचे गुड़ घीऊ से"[18] "नेकी का बदला नेक और बदी का बदला बद मिलता है।"[19] अतः देवकीनन्दन खत्री ने मुहावरों व

लोकोक्तियों का प्रयोग अत्यंत कुशलतापूर्वक किया है। 'चन्द्रकान्ता' व 'चन्द्रकान्ता सन्तति' में उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग भी देखा जा सकता है, लेकिन वे इन अलंकारों का प्रयोग अलंकारमयी भाषा बनाने के लिए नहीं, बल्कि पात्रों व दृश्य को सजीवता प्रदान करने के लिए करते हैं, यथा–

"बड़े–बड़े पत्थर के ढोके मस्त हाथी की तरह दिखाई देते हैं।"[20]

– – – – – – –

"सुबह के सुहावने समय में उसका चेहरा दिन में इस तरह दमक रहा था।"[21]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि देवकीनन्दन खत्री ने जिस भाषा का प्रयोग किया वह जन साधारण में इतनी लोकप्रिय हुई कि समाज का हर व्यक्ति 'चन्द्रकान्ता' व अन्य उपन्यासों को पढ़ने के लिए लालायित हो उठा। देवकीनन्दन खत्री के इस योगदान के लिए आचार्य शुक्ल को लिखना पड़ा कि–

"जितने पाठक उन्होंने उत्पन्न किए उतने और किसी ग्रन्थाकार ने नहीं। चन्द्रकान्ता पढ़ने के लिये न जाने कितने उर्दू–जीवी लोगों ने हिन्दी सीखी। चन्द्रकान्ता पढ़ चुकने पर वे 'चन्द्रकान्ता' की किस्म की कोई किताब ढूँढने में परेशान रहते थे।"[22]

साहित्य के अन्य रूपों के समान शैली भी महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। शैली का सम्बन्ध साहित्य के अभिव्यक्ति पक्ष से होता है। शैली के सम्बन्ध में डॉ. गुलाबराय ने लिखा ने लिखा है कि– "अच्छी शैली में व्यक्तित्व और निर्व्यक्तित्व का सम्मिश्रण वांछनीय हैं। चाहे जितने उद्योग करें, वह अपनी शैली में से अपने व्यक्तित्व को निकाल नहीं सकता, फिर भी विषय को भी उसे इतना व्यक्तित्व देना चाहिए कि वह स्वयं बोलने लगे।"[23] चन्द्रकान्ता की शैली भी इसी प्रकार की है कि कृति खुद बोलने लगती है। जब पाठक उपन्यास को पढ़ता है तो उपन्यास में चित्रित तिलिस्म व रोमांच का वातावरण पाठक के चारों ओर छा जाता हैं। 'चन्द्रकान्ता' व 'चन्द्रकान्ता सन्तति' के कथानक में किस्सागोई शैली का प्रयोग किया गया है, जिससे उपन्यास की रोचकता व कौतूहल बना रहता है। कथा का आरम्भ ठीक उसी ढंग से होता है जैसे वाचक कहानी सुनाने वालों के समक्ष अपनी कथा का आरंभ करता है। चन्द्रकान्ता के आरम्भ में हम इस शैली की झलक देख सकते हैं–

"शाम का वक्त है, कुछ लालिमा दिखाई दे रही है, सुनसान मैदान में एक पहाड़ी के नीचे दो शख्स बीरेन्द्र सिंह और तेजसिंह एक पत्थर की चट्टान पर बैठे आपस में कुछ बातें कर रहे हैं।

बीरेन्द्र सिंह की उम्र इक्कीस या बाइस वर्ष की होगी। यह नौगढ़ के राजा सुरेन्द्र सिंह का इकलौता लड़का है। तेज सिंह राजा सुरेन्द्र सिंह के दीवान जीत सिंह का प्यारा लड़का और कुँवर बीरेन्द्र सिंह का दिली दोस्त बड़ा चालाक, फुर्तीला, कमर में सिर्फ खंजर बाँधे, बगल में बटुआ लटकाये हाथ में एक कमन्द लिये, बड़ी तेजी के साथ चारों तरफ देखता और इनसे बातें करता जाता है। दोनों के सामने एक घोड़ा कसकसाया दुरूस्त पेड़ से बंधा हुआ है।"[24]

यद्यपि यहाँ कथा का आरम्भ प्राचीन ढंग से होता है लेकिन यहाँ वे प्राचीन किस्से कहानियों से थोड़ा भिन्न हैं। पहले वाक्य में नाटकीय चित्रण है तो अगले उद्धरण में हम देखते हैं कि वे कथानक को पाठक से नहीं टूटने देते और पाठक को पात्रों का परिचय नाटकीय रूप में उन्हें एक स्थान पर वार्तालाप करते दिखाकर कराते हैं। जहाँ भी पाठक उलझन में पड़ता है या ऊबने की संभावना होती है तो वहाँ कथाकार हाजिर हो जाता है और कथा से पाठक को जोड़े रखने के लिए पहले घटित किसी घटना को स्मरण कराते हुए आगे की घटना का चित्रण करता है। 'चन्द्रकान्ता' के चौथे भाग के सोहलवें बयान में लेखक की इस अद्‌भुत कल्पना शक्ति को देखा जा सकता है–

"पाठक वह समय आ गया कि आप भी चन्द्रकान्ता और कुँअर बीरेन्द्र सिंह को खुश होते देख खुश हों। यह तो आप समझते ही होंगे कि महाराज जयसिंह विजयगढ़ को रवाना होकर नौगढ़ जायेंगे और वहाँ से राजा सुरेन्द्र सिंह और कुमार को साथ लेकर कुमारी से मिलने की उम्मीद में तिलिस्मी खोह के अन्दर जायेंगे। आपको यह भी याद होगा कि सिद्धनाथ योगी ने तहखाने (खोह) से बाहर होते वक्त कुमार को कह दिया था कि जब तुम अपने पिता और महाराज जयसिंह को लेकर इस खोह में आना तो उन लोगों को खोह के बाहर छोड़कर पहिले तुम आकर एक दफे फिर हमसे मिल जाना। उन्हीं के कहे मुताबिक कुमार करेंगे। खैर इन लोगों को तो आप अपने काम में छोड़ दीजिए और थोड़ी देर के लिए आँखें बंद करके हमारे साथ उस खोह में चलिए और

किसी कोने में छिपकर वहाँ के रहने वालों की बातचीत सुनिये। शायद आपलोगों के जी का भ्रम वहाँ निकल जाय और दूसरे तथा तीसरे हिस्से के बिल्कुल भेदों की बातें भी सुनते ही सुनते में खुल जायँ बल्कि कुछ खुशी भी हासिल हो।"[25]

अन्ततः हम देख सकते हैं कि देवकीनन्दन खत्री ने जिस प्रकार सरल व सहज भाषा के प्रयोग से कथा को रोचक बनाया ठीक उसी तरह शैली में भी रोचकता व सरलता प्रदान की है। इससे जनसाधारण में उनके उपन्यासों की लोकप्रियता बढ़ी।

संदर्भ सूची

[1] अठारह उपन्यास, राजेन्द्र यादव, राधाकृष्ण प्रकाशन,दिल्ली , संस्करण 1981,पृ. 24

[2] वही, पृ. 25

[3] चन्द्रकान्ता सन्तति, देवकीनंदन खत्री, शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली, भाग–24, बयान 8 वां, पृ. 1035

[4] देवकीनन्दन खत्री, मधुरेश, साहित्य अकादमी,नई दिल्ली , संस्करण 1995 , पृ. 60

[5] देवकीनन्दन समग्र, डॉ युगेश्वर(संपादक) , प्रचारक ग्रंथावली परियोजना , हिन्दी प्रचार स्थान, वाराणसी , संस्करण , 1988 ,चन्द्रकान्ता भाग–24

[6] देवकीनन्दन समग्र, चन्द्रकान्ता, भाग–1, बयान चौथा

[7] देवकीनन्दन समग्र, भाग–1, बयान तीसवां

[8] वही, चन्द्रकान्ता सन्तति, भाग–24

[9] हिन्दी प्रदीप, बालकृष्ण भट्ट, द्वितीयक स्रोत, हिन्दी कथा साहित्य व पाठकों की रुचि, पृ. 287

[10] देवकीनन्दन समग्र, चन्द्रकान्ता सन्तति

[11] हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ,अशोक प्रकाशन , नई सड़क , दिल्ली संस्करण, 2004, पृ. 296

[12] देवकीनन्दन समग्र, भाग–3, बयान दूसरा, पृ. 32

[13] वही, चन्द्रकान्ता भाग–1, बयान सोलवां, पृ. 26

[14] वही, चन्द्रकान्ता सन्तति, भाग–22, बयान सातवां, पृ. 948

[15] वही, चन्द्रकान्ता, भाग–1, 16 वां बयान, पृ. 26

[16] वही, चन्द्रकान्ता सन्तति, भाग–24, बयान तीसरा, पृ. 1022

[17] वही, चन्द्रकान्ता सन्तति, भाग–23, बयान 5वां, पृ. 975

[18] वही, चन्द्रकान्ता, भाग–2, बयान 9 वां, पृ. 39

[19] वही, चन्द्रकान्ता सन्तति, भाग–18, बयान चौथा, पृ. 895

[20] वही, चन्द्रकान्ता, भाग–1, बयान छठां

[21] वही, चन्द्रकान्ता सन्तति, भाग–28

[22] हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 296

[23] सिद्धान्त और अध्याय, डॉ. गुलाब राय, राजकमल प्रकाशन दिल्ली , 2001 पृ. 223

[24] देवकीनन्दन समग्र, भाग–1, बयान पहला, पृ. 1

[25] वही, चन्द्रकान्ता, भाग–4, बयान 16 वां